



महिला शिक्षा एवं विकास : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ० प्रशान्त सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग

राष्ट्रीय पी०जी० कॉलेज जमुहाई जौनपुर उ०प्र०

शिक्षा—

शिक्षा मनुष्य के विकास की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। मनुष्य की प्रकृति ने अन्य प्राणियों से अलग स्वतन्त्रता प्रदान की है, जिसके कारण उसे प्रकृति के बन्धनों और मर्यादाओं का अतिक्रमण करने की छूट मिली है। मनुष्य यह अतिक्रमण उर्ध्वदिशा में करता है तो वह व्यक्ति के पतन का कारण बनता है। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का उर्ध्वगामी विकास करना है।

शिक्षा की व्याख्या करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा है— “शिक्षा का अर्थ है उस पूर्णता का व्यक्त करना, जो सब मनुष्यों में पहले से विद्यमान है।” इन अर्थों में शिक्षा मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करती है या उसके विकास की पृष्ठभूमि बनाती है। तब शिक्षा को केवल रोजी-रोजगार प्राप्त करने का साधन कैसे समझा जा सकता है? जो शिक्षा केवल इतना ही प्रयोजन पूरा करती हो और जीवन के अन्य अंगों को स्पर्श नहीं करती, उसे स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा मानने से ही इन्कार कर दिया है। — “जो शिक्षा साधारण व्यक्ति को जीवन संग्राम में समर्थ नहीं बना सकती, जो मनुष्य में चरित्रबल, परहित भावना तथा सिंह के समान साहस नहीं ला सकती, वह भी कोई शिक्षा है? जिस शिक्षा के द्वारा जीवन में अपने पैरों पर खड़ा हुआ जाता है वही सच्ची शिक्षा।”

जीविका तो मनुष्य जीवन की एक छोटी-सी आवश्यकता है। अशिक्षित और अनपढ़ व्यक्ति भी अपनी रोजी-रोटी बड़े मजे से कमा लेते हैं और प्रायः शिक्षित व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक अच्छे ढंग से कमाते हैं, इसलिए जीविकोपार्जन के लिए नौकरी प्राप्त करने के लिए कोई डिग्री प्राप्त कर लेना शिक्षा नहीं कहीं जा सकती।

शिक्षा का सही स्वरूप क्या हो?

भारत में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। छात्रों में अनुशासनहीनता, अध्यापकों में अपने उत्तरदायित्वों के प्रति और गम्भीरता आगे चलकर बेरोजगारी और ऐसी ही अनेक समस्याएं भारतीय शिक्षा जगत में व्याप्त होंगी, इनके कारणों की गहराई में जाया जाये तो प्रतीत होता है कि इन समस्याओं के मूल में प्रारम्भिक शिक्षा की उपेक्षा, नींव की कमजोरी, अयोग्य अध्यापकों की नियुक्ति, ध्येयहीनता, विद्यार्थी के सामने स्पष्ट नहीं रहता कि उन्हें पढ़कर क्या करना है? जो शिक्षा वे प्राप्त कर रहे हैं उसका उनके जीवन में क्या योगदान होता होगा? जीवन जीने में प्राप्त की जा रही शिक्षा की क्या भूमिका होगी?

शिक्षा से तात्पर्य मूलतः व्यक्तित्व के समग्र विकास से है। विद्वानों और मनीषियों ने शिक्षा की जो परिभाषाएं दी हैं, उन सबका समन्वित अर्थ व्यक्तित्व का समग्र विकास है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली की तुलना प्राचीन काल में प्रचलित गुरुकुल पद्धति से करते हैं तो उसमें जमीन आसमान का अन्तर दिखाई देता है। प्राचीनकाल में छात्र गुरुकुल से जहाँ सम्पूर्ण विकसित और प्रखरता सम्पन्न व्यक्तित्व लेकर निकलते थे, वहीं आज के शिक्षण-संस्थानों से संस्कारों के नाम पर उनकी स्थिति शून्यवत ही रहती है। शिक्षा के सम्बन्ध में पद्धति ही नहीं दृष्टिकोण को भी बदले जाने का ही परिणाम यह है कि प्राचीन काल में गुरु जहाँ शिष्य के व्यक्तित्व विकास में पूरी-पूरी रुचि लेते थे, वहाँ आज अध्यापक विशुद्ध व्यावसायिक दृष्टि से छात्रों को पढ़ाते हैं। उनका अध्यापन एक जीविकोपार्जन का साधन मात्र

रहता है, उसका कोई आदर्श नहीं है। यही कारण है कि आजकल कदम-कदम पर अध्यापकों को अपने छात्रों की उपेक्षा और अवहेलना का शिकार होना पड़ता है। प्राचीनकाल में शिष्य को माता-पिता के समान ही गुरु का सम्मान करना सिखाया जाता था, वह स्थिति आज कहाँ है? तैत्तिरीय उपनिषद् में 'मातृ देवो भव', 'पितृ देवो भव' के साथ 'आचार्य देवो भव' कहकर गुरु का महत्व माता-पिता के समान बताया गया है। इतना ही नहीं अनेक स्थानों पर तो गुरु को 'गुरु साक्षात् पर ब्रह्म' कहकर उसकी सर्वोपरिता को भी स्वीकार किया गया है।

आज की स्थिति में गुरु का न वह महत्व है और न ही गुरु अपनी वह जिम्मेदारी अनुभव करते हैं। आज की तरह उस समय अध्यापन या शिक्षण में कोई वृत्ति नहीं थी। वह एक आदर्श थी और उस कार्य में उपर्युक्त व्यक्तियों को ही लगाया जाता था। आज की तरह जिस किसी को वांछित शिक्षा या डिग्री प्राप्त कर लेने के बाद ही इस महत्वपूर्ण पद नियुक्त नहीं किया जाता था, बल्कि यह गुरुतर भार उन्हीं को सौंपा जाता था, जो अपने चरित्र और विद्वता की कसौटी पर कसकर पूर्णता प्राप्त कर लेते थे।

वर्तमान शिक्षा पद्धति के परिणामों की विवेचना करने पर यह सोचने के लिए बाध्य-सा हो जाना पड़ता है कि आज संस्थाएं जिस रूप में चल रही हैं, उससे क्या मानवीय जीवन की आवश्यकताएं पूरी होती हैं? यदि नहीं तो क्या इसका परिवर्तन और सुधार नहीं किया जाना चाहिए? और यदि किया जाना चाहिए तो उसका स्वरूप क्या हो सकता है? उसका एक ही उत्तर है कि विद्यार्थी जीवन में तपश्चर्या, तत्परता एवं संयम भावना जाग्रत की जाए। गुरु शिष्यों के सम्बन्ध में स्नेह, अपनत्व और आदर अनुशासन के मूल्यों की प्रतिष्ठा की जाए। इसके लिए सर्वप्रथम योग्य, विचारवान, दृढ़ चरित्रों प्राध्यापकों को ढूँढ़ निकालना पड़ेगा। शिक्षा की नींव जब तक चरित्रवान व्यक्तियों के हाथों में नहीं पड़ेगी तब तक राष्ट्रीय जीवन के विकास की समस्या हल न हो सकेगी।

राष्ट्र को ज्ञानवान, प्राणवान, शक्तिवान, सम्मुनत और सुविकसित बनाने के लिए वर्तमान शिक्षा पद्धति में परिवर्तन नितान्त, अनिवार्य और आवश्यक है।

शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास

मनुष्य की स्थिति अन्य प्राणियों से सर्वथा भिन्न है। वह समाज में रहता है, उसकी एक सभ्यता है, सुसंस्कृत आचरण की उससे अपेक्षा की जाती है। साथ ही उसे इतना ज्ञान सम्पन्न होना चाहिए कि दुनिया जिस तेजी के साथ आगे बढ़ती जा रही है, उसके साथ कदम से कदम मिलाकर चल सके। यह योग्यता तभी विकसित होती है, जब व्यक्तित्व और ज्ञान सम्पदा की दृष्टि से वह स्वयं कुछ उपार्जित करें, इसे योग्य बनने के लिए उसे विरासत में कुछ संस्कार और जानकारी भी प्राप्त हो। इसकी आवश्यकता और शाश्वत उपयोगिता के सम्बन्ध में एक मनीषी का कथन है कि “शिक्षा जीवन का शाश्वत मूल्य है। मानवीय चेतना जिन दो प्रकार के मूल्यों की परिधि में पल्लवित होती है, उनमें कुछ शाश्वत होते हैं और कुछ परिवर्तनशील। शिक्षा को जीवन का शाश्वत मूल्य कहा जा सकता है क्योंकि कोई भी अज्ञानी अथवा अशिक्षित व्यक्ति अपने जीवन को विकासशील नहीं बना पाता ज्ञान की अनिवार्यता हर युग में रही है इसीलिए शिक्षा को हर युग में मूल्य एवं महत्व प्राप्त होता रहा है।”

ज्ञान और आचरण में एवं बोध और विवेक में जो सामंजस्य प्रस्तुत कर सके, उसे ही सही अर्थों में शिक्षा या विद्या कहा जा सकता है। जब यह सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाता तो शिक्षा अधूरी ही कहीं जाएगी और व्यक्तित्व भी अविकसित या एकांगी विकसित रह जाएगा। जब भी कभी या जिस किसी के साथ किसी का इस सत्य से सम्बन्ध टूट जाता है, तो विद्यार्थी प्रवचनाओं का शिकार होता है, वह अपने जीवन लक्ष्य से विचलित हो जाता है आज के संदर्भ में देखें तो शिक्षा-पद्धति इसी तरह की प्रवचनाओं से पूर्ण है। छात्रों के समाने परीक्षा पास करने और डिग्री हासिल करने के अलावा कोई दूसरा लक्ष्य नहीं रहता। मूलतः वह अपनी सभी प्रवृत्तियों का केन्द्र

परीक्षा पास करना बना लेता है और जब यही एकमात्र लक्ष्य रह जाता है तो व्यक्तित्व के अन्य पहलुओं पर स्वाभाविक ही विशेष ध्यान नहीं जाता था यो कह सकते हैं कि अन्य पक्ष गौण हो जाते हैं।

आये दिनों परीक्षा में नकल कर पास होने की विविध घटनाएं प्रकाश में आती रहती हैं। प्रश्न नकल करने या न करने का नहीं है। प्रश्न यह है कि यह साधारण सा दोष किस प्रवृत्ति का सूचक है? इस प्रवृत्ति को अनैतिकता की चिंगारी ही कहा जाना चाहिए और चिंगारी चाहे कितनी ही छोटी क्यों न हो, समय पाकर वह भीषण अग्निकाण्ड रचाकर रहती है और यही हो रहा है।

इस स्थिति के लिए विद्यार्थी इतने दोषी नहीं है, जितनी कि शिक्षा-पद्धति। प्रचलित शिक्षण पद्धति छात्रों के सामने कोई ध्येय, कोई आदर्श उपस्थित नहीं कर पाती या कहना चाहिए, वह ध्येयहीनता के अन्धकार में धकेलती है, तो उस स्थिति में जो ज्ञान जीवन को सुसज्जित और सुरभित बनाता है, वह ज्ञान कहाँ उपलब्ध हो पाता है? कहा जा चुका है कि शिक्षा का मूल उद्देश्य व्यक्तित्व का समग्र विकास है।

इस संदर्भ को स्मृति में रखने के लिए प्रचलित शिक्षा-पद्धति में आवश्यक सुधार करना ही एकमात्र उपाय है और वह सुधार इस सिद्धान्त को केन्द्रों में रखते हुए भी सम्भव हैं कि शिक्षा का उद्देश्य कोई सूचनाएं या जानकारीयां देना मात्र नहीं है, वरन् व्यक्तित्व का समग्र विकास करना है।

हमारी शिक्षा कैसी होनी चाहिए?

मानव में मानवता तभी स्थिर रह सकती है, जबकि उसे ऐसी शिक्षा दी जाये जिससे उसका सतत विकास होता रहे। जीवात्मा स्वभाव से ही ऊँची उठने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहती है।

वर्तमान समय में जो शिक्षा दी जाती है, वह हमें पूर्ण विकास के मार्ग पर न ले जाकर अहंकारी, प्रमादी तथा मर्यादा से च्युत करने में सहायक बन रही है। आज की शिक्षा, शिक्षार्थी तथा शिक्षक तीनों जीवन विकास में किस प्रकार सहायक हों तथा शिक्षालय में कितना प्रेम-सद्भावना

आदि विशिष्ट गुण, वातावरण पैदा हो यह समस्या विचारणीय ही नहीं किन्तु परम आवश्यक है। इस समय की वे घटनाएं जो आए दिन विद्यालयों में सुनाई दे रही हैं, उनसे शिक्षा के वर्तमान स्वरूप का स्पष्ट चित्र सारे संसार को दिखाई दे रहा है।

आज की शिक्षा में भौतिकवाद का बोल-बाला है। शिक्षा के विषय ऐसे चुने गए हैं कि उस विषय की अधूरी ही शिक्षा दी जाती है। शिक्षार्थी की बौद्धिक शक्ति का विकास होता है, वे तोतारटंत या रिकार्ड मशीन की तरह एक विशेष स्थिति में ही रह जाते हैं। वर्तमान शिक्षा एकांगी है। वास्तविक शिक्षा वह है, जिससे मनुष्य अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों पथ का पथिक बन सके जिससे मनुष्य का तन सबल, मन स्वच्छ हो, वह छल प्रपंचरहित, परोपकारी, बुद्धिमान तथा एक सुयोग्य नागरिक बने वही सच्ची शिक्षा कही जा सकती है।

शिक्षा ऐसी हो जिससे आत्मा को गति मिले, मानवता का प्रसार हो, शिक्षार्थी की शारीरिक, मानसिक उन्नति हो।

शिक्षा प्रसार संस्थाएं अपने इस महत्वपूर्ण कार्य को अच्छी प्रकार से समझे। शिक्षा को किसी विशेष दृष्टिकोण में ही आबद्ध न किया जाये क्योंकि शिक्षा से मनुष्य सब प्रकार की उन्नति करता है। आज की शिक्षा को जब उस वैदिक युग की शिक्षा से मिलाते हैं, तो इसी परिणाम पर दृष्टि जाती है कि वर्तमान शिक्षा अधूरी है।

कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा से मानव में पूर्णता आती है। जीवन स्तर और बौद्धिक शक्ति का विकास होता है। राष्ट्र का उत्थान अच्छी शिक्षा प्राप्त होने से हो सकता है। अतएव शिक्षा के सर्वांगीण विकास के मूलतत्त्व को विकसित करना नितान्त आवश्यक है। शिक्षालयों का वातावरण जिस ओर अधिक अच्छा बनाया जाये मनुष्य के मस्तिष्क के साथ ही उसके हृदय को भी विशाल एवं उदार जिस शिक्षा के माध्यम से बनाया जाय, आज वैसी ही शिक्षा की नितान्त आवश्यक है।

शिक्षा ऐसी हो जो समस्याएँ सुलझाएँ

शिक्षा विकसित राष्ट्र की एक अनिवार्य आवश्यकता हैं। शिक्षा नीति पर लम्बी-चौड़ी चर्चाएं हो रही हैं, रिपोर्ट तैयार हो रही हैं, परन्तु क्या सीखा जा और सिखाया जाय; इसका अभी निर्धारण नहीं हो पा रहा है। विद्यार्थी से पूछा जाय तो वह कहेगा पढ़ रहा हूँ, जो पढ़ाया जा रहा है। नौकरी के अतिरिक्त कुछ और भी प्रयोजन सम्भव है क्या? यह उसने कभी सोचा ही नहीं। यदि अच्छी नौकरी न मिल सके तो फिर शिक्षार्थी को अपना परिश्रम निरर्थक गया ही लगेगा और अभिभावक इसे धन की बर्बादी के रूप में ही लेंगे।

शिक्षा का उद्देश्य जीवन की सर्वांगीण समस्याओं का समाधान ही हो सकता है, होना भी चाहिए। इसी श्रृंखला में एक प्रश्न आजीविका उपार्जन का भी है, उसे शिक्षा के अविच्छिन्न अंग के रूप में इस प्रकार जुड़ा रहना चाहिए कि पढ़ाई के उपरान्त अपनी रोटी स्वावलम्बी रीति से कमा सकने में समर्थ हो सके। इस देश का प्रधान व्यवसाय कृषि-पशुपालन है। शिक्षा पद्धति से यदि कृषि और पशुपालन का काम-चलाऊ ज्ञान जोड़ दिया जाय और उसके व्यावहारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था कर दी जाय तो शिक्षित व्यक्तियों की आजीविका उपार्जन के पुराने क्षेत्र में नया उपार्जन करके लाभ मिल सकता है।

गृह उद्योगों का क्षेत्र दूसरा है। यदि विदेशी मुद्रा उपार्जन और उसके बदले विलासिता की चीजें मंगाने का आग्रह छोड़ दिया जाय तो स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था के लिए विकेंद्रित गृह उद्योगों को प्रोत्साहन देने की नीति ही अपनानी पड़ेगी। सामाजिक ज्ञान इसी प्रकार की उपयोगी जानकारी में है। प्रजातन्त्र में वोट का कितना महत्व है, उसका उपयोग कैसे करना चाहिए इस पर एक पूरी पुस्तक रहनी चाहिए। सरकार का काम है कि शिक्षा प्रक्रिया की वर्तमान लुंज-पुंज प्रणाली के बदले जनता का कर्तव्य है कि सार्थक शिक्षा प्रक्रिया की ऐसी मांग करें, जिसे पूरा करने के लिए शासन को सहमत होने के लिए विवश ही होना पड़े। यदि ऐसा न हो तो लोकसेवी संगठन इस दिशा में आगे

आये एवं अनौपचारिक शिक्षण की व्यवस्था बनाये। प्रज्ञा-प्रशिक्षण को इसी श्रेणी का एक प्रयास माना जा सकता है।

महिला शिक्षा

अशिक्षा, घर की चहारदीवारी का कारावास, पर्दा-प्रथा, बहुप्रजनन, कामिनी और रमणी के रूप में साहित्य तथा कला में चित्रण आदि कितने ही कुचक्र हैं जो नारी को छलने के लिए सदियों से चले आ रहे हैं और नित नये ढंग से निकलते जा रहे हैं। इन कुचक्रों के कारण दिनोदिन नारियों की होती जा रही दुर्दशा को देखकर यही विचार आता है कि पुरुष कही उसकी अपार क्षमता और असंदिग्ध योग्यता को देखकर खौफ तो नहीं खा गया है और उसकी क्षमताओं तथा योग्यताओं को विकसित न होने देने के लिए तरह-तरह के षड्यन्त्र रचने में अपनी बुद्धि का प्रयोग करने लगा है।

ऊंगलियों पर गिने जाने योग्य हैं, उन महिलाओं की संख्या, जिन्होंने अपनी क्षमताओं की पहचान और उत्पन्न की गयी बाधाओं की परवाह किये बिना आगे बढ़ी पर अधिकांश महिलाएं दीन-हीन अवस्था में हैं, अबला हैं, आश्रिता हैं, दासी हैं और एक विचारक के तीक्ष्ण शब्दों में 'सुरक्षित वेश्या' है।

नारी की क्षमता को अवरुद्ध रखने में सबसे बड़ा प्रतिबन्ध है- शिक्षा का। अशिक्षा नारी के लिए एक षड्यन्त्र ही है और यह षड्यन्त्र इतने सुन्दर ढंग से रचा गया है, उसके पीछे इतने बढ़िया तर्क दिये गये हैं कि पुरुष की नीयत पर सन्देह करना ही पड़ता है। उदाहरण के लिए कहा जाता है- "नारियों के लिए पढ़ने क्या जरूरत है, उन्हें कोई नौकरी चाकरी तो करनी नहीं, न किसी घर की मालकिन बनना है। उसके लिए तो घर 'गृहस्थी' का काम सीख लेना ही पर्याप्त है।"

स्त्रियों के लिए शिक्षा को अनावश्यक बताते हुए कहा जाता है कि "लड़कियाँ पढ़-लिखकर जब तक होशियार होती हैं; वे विवाह करने लायक हो जाती हैं और विवाह के बाद पराये घर चली

जाती हैं। उनकी शिक्षा-दीक्षा में लगाये गये समय, श्रम और धन का लाभ हमें मिलता नहीं, फिर पढ़ाने से क्या लाभ?"

अब समय आ गया है कि भारत की नारी अपना गौरवपूर्ण पद प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहे। कुछ मामलों में भारत की नारियां पाश्चात्य देशों की नारियों से पिछड़ी हुई हैं। इन बातों को ध्यान में रखकर भारत में स्त्री-शिक्षा की व्यवस्था करना आवश्यक है। हमारे समाज में बहुत-सी गलत धारणाएं नारी-उत्थान में बाधक होती हैं। उन्हें समाप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

प्राथमिक स्तर पर स्त्री-शिक्षा का अधिकाधिक विकास किया जा चुका है और अब भी किया जा रहा है। केवल ग्रामीण क्षेत्रों में सन्तोषजनक विकास नहीं किया जा सका है। अनिवार्य शिक्षा योजनाओं के अन्तर्गत बालक-बालिकाओं की शिक्षा-व्यवस्था पृथक-पृथक करना ठीक नहीं। प्रथम पंचवर्षीय योजना के पश्चात् 39,276 गाँवों में 8,959 तथा 1083 नगरों में 284 बालकों के लिए अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गयी थी। स्त्री-शिक्षा की योजनाओं में सुधार होने, स्त्री-शिक्षा की व्यवस्था में प्रगति होने की सम्भावनाओं के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि स्त्री-शिक्षा का विकास तीव्रतर होगा और बालिकाओं की शिक्षा पाने वाली संख्या के प्रतिशत में अपूर्व वृद्धि भी होगी। विविध सामाजिक रूढ़ियाँ एवं पिछड़ेपन के कारण कन्याओं को अग्रिम शिक्षा प्राप्त करने में बाधक होते हैं।

नारी पुरुष के समान विविध कार्य क्षेत्रों में उन्नति कर सकती है। अतः स्त्री वर्ग को प्रत्येक कार्य-क्षेत्र में कार्य करने और शिक्षा प्राप्त करने का अवसर देना चाहिए। कुछ व्यक्तियों की यह शंका भ्रामक एवं निर्मूल है कि स्त्री-शिक्षा में व्यावसायिकता लाने से पुरुषों की बेरोजगारी में वृद्धि होगी। वे लोग यह भूल जाते हैं कि नारी की असहाय अवस्था में उसे जीविका कौन देगा, यदि उन्हें इस योग्य न बनाया जाय कि वे अपना एवं अपने बालकों का पेट भर सकें? हमारी सामाजिक रूढ़ियाँ विधवा

स्त्री को पुनर्विवाह के लिए अनुमति नहीं देती और वे उसे किसी व्यावसायिक शिक्षा लेने के लिए भी राय न दें तो इससे उत्पन्न सामाजिक अनैतिकता शोषण और अवदमन को कौन रोक सकता है?

अविधिक शिक्षा साधनों में परिवार एवं समाज प्रमुख स्थान रखते हैं। सर्वप्रथम मानवीय संस्कारों का जन्म बालकों में परिवार ही देता है। परिवार की स्तम्भ स्त्री है जो माता के रूप में बालक को विविध संस्कार ग्रहण कराने का एकमात्र सहारा होती है। शिक्षित महिलाएं इस दृष्टि से बहुत बड़ा सुधार कर सकती हैं एवं राष्ट्र को उन्नत करने में, योग्य नागरिक गढ़ने में सफल सहयोग दे सकती हैं। स्त्री शिक्षा की आकांक्षा पर ये पंक्तियाँ बिल्कुल उपर्युक्त लगती हैं—

हटा दो बाधाएं सब मन की, मेरे पथ की,
मिटा दो आकांक्षाएं सब मन की।
जमाने को बदलने की शक्ति को समझो,
कदम से कदम मिलाकर चलने तो दो मुझको।।

स्त्री शिक्षा की समस्याएं

सामाजिक पिछड़ेपन की समस्या

भारत विश्व के प्रगतिशील देशों की अपेक्षा रूढ़िवादी एवं अन्धविश्वासी होने के कारण पिछड़ गया है। पर्दा—प्रथा, बाल—विवाह, स्त्री—जाति को परतन्त्र रखना एवं उसे केवल घर का आभूषण समझना आदि बातें स्त्रियों को शिक्षा ग्रहण करने में बाधा उत्पन्न करती है। यही कारण है कि भारत में स्त्री वर्ग पुरुषों के समान शिक्षित नहीं हो सका। आज इस बात की आवश्यकता है कि भारत की सामाजिक दशाओं में प्रगतिशीलता एवं समकालीनता लायी जाय। रूढ़िवादिता एवं अन्धविश्वासों को समाप्त करके स्त्रियों की शिक्षा के लिए अवसर एवं सुविधाएं जुटायी जाएं।

स्त्री—शिक्षा के उद्देश्यों की समस्या

स्त्री—शिक्षा का उद्देश्य स्त्रियों को स्वतन्त्रता प्रदान करके पुरुषों के समान विकसित होना है। परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि स्त्रियाँ स्त्रियोचित कर्तव्यों को भूलकर अपने गृहस्थ—जीवन की डोरी से कटकर दूर छिटक जाएं। हमें स्त्री—शिक्षा के माध्यम से जहाँ भारतीय नारी का विकास

करना है, वहीं भारतीयता की सुरक्षा करना भी आवश्यक है। हमें स्त्री वर्ग की शिक्षा व्यवस्था करते समय भारतीयता एवं स्त्रियोचित शिक्षा पर ध्यान देना होगा।

शिक्षा—पाठ्यक्रम एवं शिक्षा—पद्धति की समस्या

स्त्री—शिक्षा में यह बात भी विचारणीय है कि स्त्रियोचित पाठ्यक्रम तथा शिक्षा—पद्धति क्या थे? स्त्री केवल स्त्री ही नहीं वह सर्वप्रथम जननी है, पत्नी है तथा अन्य सामाजिक स्थान प्राप्त करने वाली सामाजिक सदस्या है। वह अपने विभिन्न पदों पर कर्तव्य पालन करने की सामर्थ्य पा सके ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

सह—शिक्षा की समस्या

कुछ लोग सह—शिक्षा के पक्ष में हैं तो कुछ विरोध में। इस समस्या के लिए प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा स्तर पर सह—शिक्षा लागू न की जाय। जहाँ तक हो, प्रत्येक स्तर पर पृथक्—पृथक् शिक्षा—संस्थापित की जाये। सह—शिक्षा—व्यवस्था में स्त्रियोचित पाठ्यक्रमों की रूचिकर व्यवस्था की जानी चाहिए। परन्तु जो पुरुष छात्रों के समान शिक्षा ग्रहण करना चाहें वह करें।

आर्थिक समस्या

सरकार और समाज के पास इतना धन नहीं है कि वह स्त्रियों के लिए पृथक् भवन, शिक्षण—उपकरण एवं अन्य सुविधाएं जुटा सकें। भारत की निर्धनता की स्थिति इस व्यवस्था में बहुत बड़ी बाधा है। इस समस्या का हल सह—शिक्षा द्वारा किया जा सकता है, परन्तु वह केवल प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा स्तर पर होना सम्भव है।

अध्यापिकाओं की समस्या

स्त्री—शिक्षा की व्यवस्था करने में यह भी भारी कठिनाई है कि व्यावसायिक शिक्षा, ललित कलाओं की शिक्षा एवं अन्य समाजोपयोगी शिक्षा देने के लिये योग्य अध्यापिकाएं नहीं मिलती।

स्त्री शिक्षा

ईसाई मिशनरियों ने यहां स्त्री-शिक्षा 1824 में ही आरम्भ कर दी थी, किन्तु इस दिशा में वास्तविक आरम्भ केवल 1850 से ही किया गया मानना चाहिए। लड़कियों का पहला विद्यालय 1849 में अहमदाबाद में गुजरात बर्नेकुलर सभा ने और बम्बई में एक विद्यार्थियों की साहित्यिक और वैज्ञानिक सभा ने स्थापित किया था। इस आन्दोलन ने 1854 में विख्यात श्री वुड के "एजुकेशन डिस्पैच" नामक पत्र के प्रकाशन के साथ जोर पकड़ा जिसने कि कम्पनी की नीति-स्त्री-शिक्षा-प्रसार घोषित की थी। इसके बावजूद, पहले साठ वर्षों में इस जोर अपेक्षाकृत बहुत अल्प प्रगति हुई। लगभग 1882 में कलकत्ता विश्व-विद्यालय के उप-कुलपति ने कहा था- "बंगाल में विद्यालय जाने योग्य आयु की लड़कियों में से, लगभग एक प्रतिशत लड़कियां ही विद्यालय में जा रही है। इण्डियन नेशनल सोशल कांग्रेस, कार्य समाज, रामकृष्ण मिशन तथा फुले, पंडित रामाबाई, श्रीमती रामाबाई रानाडे और महर्षि डी०के० कर्वे के समान व्यक्तियों के प्रयत्नों के फलस्वरूप कुछ प्रगति वास्तव में ही हुई, किन्तु सब मिलाकर सफलता बहुत नहीं मिली। केवल 1932 से 1937 के वर्षों में हम पहली बार हायर सेकेन्ड्री स्कूल जाने वाली लड़कियों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई पाते हैं किन्तु इसके पीछे के दस वर्षों में स्कूल जाने वाली लड़कियों की संख्या दो गुणा से भी अधिक हो गयी।

नारी शिक्षा में प्रगति

सन् 1917 में वार्धा शिक्षा योजना के अन्तर्गत बेसिक शिक्षा के स्वरूप को विकसित किया गया था जिसके अध्यक्ष महात्मा गांधी थे। राधाकृष्णन रिपोर्ट 1949 के लागू करने की सिफारिशें रखी गई थी। इतना ही नहीं यह भी अनुभव किया गया कि महिलाओं के लिए अलग से शिक्षा संस्थाओं का गठन होना चाहिए तथापि लेडी इरविन, लेडी हार्डिंग आदि स्कूल/कॉलेज स्थापित हो गये। डॉ० भीमराव अम्बेडकर नारी शिक्षा के हिमायती थे। उन्होंने 'जन शिक्षा समाज' की नींव डाली और बम्बई

तथा औरंगाबाद में कॉलेजों की स्थापना की। इस प्रकार एक के बाद एक अनेक शिक्षण संस्थाओं का प्रादुर्भाव हो गया और नारी शिक्षा के द्वार खुलते चले गये।

। nHkz । ph

1. पंडित श्रीराम शर्मा, आचार्य वाङ्मय— इक्कीसवी सदी : नारी सदी
2. पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय— शिक्षा एवं विद्या
3. डॉ० सरयू प्रसाद चौबे— तुलनात्मक शिक्षा
4. डॉ० ए०के० सालोदिया— विकास एवं बैंकिंग वित्त प्रबन्धन
5. धर्मपाल— नारी एक विवेचन
6. डॉ० शशिरानी अग्रवाल— वर्तमान स्त्री संदर्भ में।



डॉ० प्रशान्त सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग
राष्ट्रीय पी०जी० कॉलेज जमुहाई जौनपुर उ०प्र०
मो०नं०— 8948268238
Email ld-prashantsingh232629@gmail.com